भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-8, अंक-1-2	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-10.00
मंगलवार, 26 जन' 85	मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.00

ज्योत से ज्योत.....

1952 का वर्ष और उस वर्ष की फरवरी मास की तीसरी तारीख स्वामिनारायण संप्रदाय के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में अंकित है।

उस दिन भगवान स्वामिनारायण की धर्ममिशाल के मशालची योगीजी महाराज ने अपनी मशाल अन्य मशालची-अपने लाडले वारिशदार प.पू. काकाजी के हाथ में सौंप दी ! एक समर्थ भंवरी ने समरूप समर्थ भंवरी बनाई।

अयोध्या के निकट 'छपैया' गांव में प्रगट हुए 'घनश्याम' या 'नीलकंठ' या 'सहजानंद स्वामी' या 'श्रीजी महाराज' या 'स्वामिनारायण' वास्तव में नारायण थे। किसी भी प्रकार के भेदभाव–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि के जातिभेद, धनी या गरीब, राजा या रंक, पुरुष या स्त्री–प्रत्येक को आत्यंतिक मुक्ति की अर्थात् अपनी चेतना को दिव्यता में परिवर्तित करने का अधिकार है। इस प्रकार की क्रान्तिकारी विचारधारा इन्होंने प्रस्तुत की इतना ही नहीं, बल्कि जो-जो इनके संबंध में आए हरेक के जीवन में प्रभु बसा दिए और दिव्यता प्रगट करके अक्षरधाम मशालची-अपने लाडले वारिसदार प.पू. काकाजी (जिसका कभी नाश नहीं होता है) के निवासी बनाए !

अपने स्वल्प जीवनकाल में इन्होंने-विशेषकर के ग्रामीण प्रजा में-नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक क्रान्ति की। जगह-जगह आध्यात्म केन्द समान अनेक मन्दिरों का निर्माण किया इतना ही नहीं 500 पवित्र संतों-परमहंसोरूप चैतन्यमन्दिर भी जगत को भेंट में दिए। जगत के धार्मिक सम्प्रदायों पर एक नजर डालें तो लगता है कि जब तक सम्प्रदाय में मुख्य पुरुष जीवित रहता है तब तक सम्प्रदाय खूब तेजी से विकास की ओर अग्रसर होता दिखाई पड़ता है। लेकिन उसके शरीर छोड़ने के बाद सम्प्रदाय शिथिल पड़ जाता है। कभी-कभी केवल ऐतिहासिक Showpiece ही बन जाता है या कभी-कभी academic discussion या कुछ और संशोधन (research) के लिए अध्ययन का विषय बना रहता है। जबकि एक प्रबल, प्रभावकारी, सतत प्रवाहमान, सतत विकासशील, सतत सेवारत दिव्य अखंड ज्योति लिए स्वामिनारायण सम्प्रदाय 200 साल के बाद भी आज अत्यधिक जीवंत और शाश्वत है। यह ज्योति अधिक तेजस्विता लिए एक अविरत गति से प्रज्जवलित ही है और अनादिकाल तक रहने वाली है। कोटि वंदन हो स्वामिनारायण भगवान को जिन्होंने केवल स्थूल मन्दिरों और स्थूल मूर्तिओं का निर्माण नहीं

किया, किन्तु सारे ब्रह्मांड को हिला दे ऐसे ब्रह्मस्वरूप संत द्वारा नींव तैयार की। अपने जीवनकाल में ही गुणातीतानंदस्वामी से अपने ही 'अक्षरधाम' का परिचय जगत को स्पष्ट करवाया। अपनी विरासत सौंप कर मनुष्य चेतना को दिव्य चेतना में रूपांतरित करने की प्रणाली। गुणातीतानंद स्वामी, भगत जी महाराज, जागास्वामी, शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज द्वारा अविराम चलती रही। आज योगीजी महाराज की मशाल से दिव्य तेज प्राप्त करे काकाजी, पप्पाजी और स्वामिजी की त्रिपुटी असाधारण क्षमता से नई रोशनी लिए तीव्रता से परम भगवदिय कार्य कर रही है....

1952 की 3 फरवरी का ऐतिहासिक मूल्य है। ऐतिहासिक मूल्य उस घटना का होता है जिसका प्रभाव तत्क्षण नहीं, किन्तु भूत, वर्तमान और भविष्य पर अर्थात्—सनातन होता है।

– एक व्यक्ति का प्राकृतिकता से दिव्यता में रूपांतरण

– एक व्यक्ति के क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध कर्मों की महती विनष्टि,

– एक व्यक्ति को अक्षरधाम का तेजोमय दर्शन,

– एक व्यक्ति का ब्रह्मस्वरूप होना,

– एक व्यक्ति में भक्ति और मुक्ति का संगम,

– एक व्यक्ति का परिब्रह्म, परम गुरु और स्वयं के-द्रष्टा, दृश्य और दर्शन के एक होने की अनुभूति और

– एक व्यक्ति का स्वयं तीर्थ होने की घटना इसका मूल्य सनातन होता है और सर्वकाल के मनुष्यों के लिए कल्याणकारक, हितकारी होता है। विरासत में प्राप्त हुई अक्षरधाम की शाश्वत मूर्ति के आनन्द के स्वयं तो वारिसदार बने ही, साथ ही अपने सम्पर्क में आने वाले हरेक के सुख-दुख की जिम्मेदारी ले लेने की दृढ़ प्रतिज्ञा भी प.पू. काका जी ने 3 फरवरी 1952 के महामंगलकारी दिन ले ली।

यह परम सत्य है कि भगवदिय चेतना और भगवदिय कार्य करना कोई साधारण कार्य नहीं है। सर्वस्व लुटा कर, पूर्णतया मिट कर जीवित होने की यह बात है। सर्वविदित है कि शेरनी का दूध सोने के पात्र में ही टिक पाता है। दूसरी धातु का पात्र तो दूध डालते ही टूट जाता है। योगीजी महाराज की पारखी दृष्टि ने प.पू. काकाजी को हीरे के रूप में पहचान लिया था....पात्रता देखकर ही धर्म मशाल प.पू. काकाजी के हाथों पकड़ा कर वह निश्चिन्त हो गए।

– जिस व्यक्ति ने अपने बड़े भाई (आज के हमारे प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. पप्पाजी) को सात साल की शिशु अवस्था में पूछा हो 'स्वर्ग को पृथ्वी पर कैसे लाया जा सकता है'?

– जिस व्यक्ति ने गुरुहरि शास्त्री महाराज को 11 साल की आयु में कहा—'बापा, मैं तो मरने आया हूँ'।

– और जिस व्यक्ति के बारे में शास्त्रीजी महाराज ने अपनी वेधक दृष्टि से नाप कर, दिल से निकले उद्‌गार में कहा हो: 'अक्षरपुरुषोत्तम की निष्ठा प्रवर्तित करने वाला पृथ्वी पर प्रगट हो चुका है।' दादु तो अनन्त ब्रह्मांडों को डोलाने वाला है।' ऐसे व्यक्ति को—पात्र को योगीजी महाराज भगवान की कृपा का अक्षयपात्र बना दें तो क्या आश्चर्य?

योगीजी महाराज जानते थे कि दादुभाई शास्त्री महाराज की दृष्टि के परम कृपापात्र है। प.पू. शास्त्रीजी महाराज ने अपने चंदनयुक्त शरीर से 'काकाजी' को दो बार आलिंगन किया था। अपने चरणार्विन्द काकाजी की छाती पर प्रसादीरूप रखकर महती कृपा की थी और उस समय योगीजी महाराज ने भी काकाजी की छाती पर हाथ फिरा कर कहा था 'दादुभाई आज से आप ब्रह्मरूप हो गए !'

योगीजी महाराज सशक्त हाथों में अक्षरधाम की बागडोर सौंपना चाहते थे.....सो उन्होंने प.पू. काकाजी को अत्यधिक कसनी में भी लिया। सुवर्ण जैसी धातु को भी अधिक निखारने कसौटी होती है, फिर काकाजी को तो समर्थ चैतन्यशिल्पी बनाने का उनका स्वप्न था। प्राणीमात्र की दिव्यता का उद्‌घाटक जिसको बनाना हो

उसकी प्रकृतिन्याय के अनुसार भी कसौटी होगी।

साक्षात्कार के पूर्व काकाजी क्या थे? साक्षात्कार के पूर्व भी वह छोटे नहीं थे। 'सरदार वल्लभभाई'– जिनका नाम बोलते ही एक असाधारण बल और वीरता की प्रेरणा मिलती है, उसी कुल के, उसी गांव के पू. काकाजी हैं। शैशव अवस्था से ही वह कंगाल शिशु नहीं था।

क्या होना था?

सबसे बड़ा !

सबसे बड़ा कौन?

सबसे बड़ा गवर्नर।

ठीक है, हम गवर्नर बनेंगे !

उसके लिए क्या करना पड़ेगा?

असाधारण बल और असाधारण अध्ययन। काकाजी उस अवस्था में भी स्वप्नसेवी नहीं, स्वप्नशिल्पी थे। सोचना बड़ा-बड़ा, करना कुछ नहीं ऐसी बात इनमें नहीं थी। उच्चतम महत्वाकांक्षाएं और उनको परिपूर्ण करने के सतत पुरुषार्थ से ही हरेक क्षेत्र में वे प्रगति के पथ पर बढ़ते ही गए। अफ्रीका में पढ़ने गए वहां इनको स्कालरशिप देनी या नहीं इस बारे में थोड़ी हिचक होती दिखाई पड़ी। तब काकाजी का प्रखर संकल्प मुखरित हो उठा–'अब तो आप देना भी चाहो तो भी नहीं चाहिए।' कंगाली या हीनता का नामोनिशान भी नहीं.....केवल ध्येय के प्रति अजोड़ दृढ़ता ! कहीं भी अध्ययन रुका नहीं और काकाजी ने लंदन की बी.एस.सी, ए.सी. पी. डिग्री प्राप्त करी। बाद में व्यापार की ओर कदम बढ़ाये तो वह भी 'टाप'। हजारों का नहीं, लाखों का नहीं, किन्तु करोड़ों का व्यापार किया। 'दुनियावी प्राप्ति चाहो इतनी कर सकता हूँ'–इस बात को यह वीर पुरुष ने सिद्ध कर दिया। कोई-कोई संसार से हार मानकर इस रास्ते चल पड़ते हैं। काकाजी तो पहले ही स्वराट थे और शास्त्रीजी महाराज एवं योगीजी महाराज ने उनको 'सम्राट' बना दिए।

इतनी योग्यता, शक्ति, सामर्थ्य होने के बावजूद भी काकाजी आत्मकेन्द्रित नहीं थे। अतः अहंकार इन्हें छू नहीं पाया। काकाजी बचपन से सोचते थे कि इस संसार में स्वर्ग का अवतरण कैसे हो? नहीं कि 'दादु' नामक एक व्यक्ति कैसे महान् हो सकता है? अपने व्यक्तित्व को समष्टि में विभक्त करने की इनकी इच्छा थी। अपना बल, शक्ति, ओजस् संसार का हो जाए यही थी उनकी मनीषा ! इसी कारण ही तो विदेश की भौतिक उपलब्धियां, चमक-दमक, विलासिता, बाहरी आकर्षण काकाजी को प्रभावित नहीं कर पाई। जगत का रंग इन्हें स्पर्श भी नहीं कर पाया। साक्षात्कार होने से पहले यूरोप से लिखी एक चिट्ठी जो कि उन्होंने प.पू. पप्पाजी को लिखी थी उसके शब्द है–

'गुरुदेव यज्ञपुरुषदास की कृपा से मैं इहलोक और परलोक के समस्त (प्राकृतिक) बलों के सामने लड़ने वाला हूँ और एक दिन सबको आश्चर्यचकित कर दूँगा। मुझे यूरोप की सभ्यता-आभास स्थान वृत्तियों एवं बुलबुला समान जीवन के क्षणिक सुख मृगमरीचिका समान लगते हैं। इनका मेरे पर तनिक भी प्रभाव नहीं है। मुझे तो शाश्वत् सुख शाश्वत् शान्ति, शाश्वत् आनन्द चाहिए। मुझे Limited light नहीं चाहिए। मुझे तो इस जीवन में शाश्वत् तेजोमय धाम का दर्शन करना है.....उसके योग्य बनना है। मुझे तो शुक्राचार्य के संजीवनी मंत्र को सिद्ध करना है। मेरे साहस में मुझे गुरु बिना किसी की सहायता नहीं चाहिए। मैं बड़ा जंग खेल रहा हूँ।'

बचपन से गवर्नर बनने की इच्छा थी। इसके लिए जो बलिष्ठ मनोवृत्ति थी यही बलिष्ठ वृत्ति यहां क्रियान्वित हुई, परन्तु शास्त्रीजी महाराज की निगाहों में आने के बाद महत्वाकांक्षा ने रुख बदला। यहां 'शाश्वत् आनंद' की आकांक्षा है। वृत्तियाँ जिसको छू न सके–जो वृत्तियों को आज्ञा करे वह स्वराट् हैं, अर्थात स्वयं अपना मालिक है; और वही सम्राट बन सकता है। सम्राट वह है जो ब्रह्मांड के हर हृदय पर प्रेम द्वारा शासन करता है और इस शासन का उद्देश्य हर व्यक्ति

के कल्याण की ही भावना हो।

'काकाजी' की महत्वाकांक्षा ने ही रुख नहीं बदला। इनकी बल की भावना ने भी रूप बदला। नहीं तो शुक्राचार्य के संजीवनी मंत्र की मांग क्यों करते? उन्होंने संजीवनी बूटी अपने लिए नहीं, सारी मानवजाति के लिए चाही थी। असाधारण प्रेम के बिना यह असंभव था। अपने भाई को लिखी हुई चिट्ठी के प्रारंभिक वचन– 'गुरुदेव यज्ञोपुरुषदास की कृपा से....!' मेरे खुद के भरोसे पर नहीं, किन्तु गुरुदेव की कृपा से–यह हैं निष्ठा। तत्त्वतः यह भगवान में निष्ठा है। शास्त्र में लिखा हैः 'गुरुदेवतात्मैक्यं विभाव्य....। व्रत, जप, नियम, पाठ कुछ भी करना हो तो प्रथम गुरु देवता और अपनी आत्मा की एकता दृढ़ कीजिए। ऐसी दिव्य निष्ठा, ऐसा दिव्य प्रेम और ऐसा अप्रतिम बल हो तो 'काकाजी' की शैशव की मनीषा 'स्वर्ग पृथ्वी पर उतरे' यह क्यों सिद्ध नहीं होगा?

'काकाजी' की दृष्टि भूल भूलैया में भटकी हुई भी नहीं थी। शास्त्रीजी महाराज प्रभावक पिता थे और योगीजी महाराज ज्ञान गरीबी धारण करने वाली मां थी यह 'काकाजी' को स्पष्ट था। शास्त्री जी महाराज और योगीजी महाराज एक ही थे और दोनों समानरूप से भगवत्रूप थे ऐसा समझने की शक्ति भी 'काकाजी' में थी। ऐसी दृष्टि होना अत्यंत कठिन है। कईयों को तो भगवान स्वामिनारायण अवतार है इसमें ही श्रद्धा नहीं थी। थोड़े लोगों को यह श्रद्धा थी, तो वही सीमित हो गई थी। अक्षरमूर्ति में (स्वामिनारायण भगवान के खुद कहने के बावजूद भी) इनकी श्रद्धा नही थी। इस प्रकार,कईयों की श्रद्धा शास्त्री जी महाराज तक समिति थी। शास्त्रीजी महाराज ने कहा था–'मैं योगी हूँ और योगी मेरा रूप ही है।' तब भी कई योगीजी महाराज को पहचान नहीं पाए थे। किन्तु 'काकाजी' की निर्मलदृष्टि ने यह एकात्मकता स्पष्ट देख ली थी। परिणामरूप जितनी निष्ठा से शास्त्रीजी महाराज को गुरु माना था इतनी ही निष्ठा से ज्ञान गरीब ज्ञानजीवनदास–योगीजी महाराज को गुरु माना। यदि काकाजी, पप्पाजी, हरिप्रसादस्वामिजी, महंतस्वामिजी, प्रमुखस्वामिजी आदि संत नहीं होते तो 'अक्षरपुरुषोत्तम' की युगल उपासना वहां ही समाप्त हो जाती और अन्यान्य धार्मिक सम्प्रदायों जैसी जड़ परम्परा ही रह जाती है। किन्तु भगवान स्वामिनारायण का संकल्प कैसे असिद्ध हो सकता है। इन्होंने शास्त्रीजी महाराज के जीवनकाल में ही 'काकाजी' जैसी विभूति का अवतरण कर दिया था।

प.पू. काकाजी जैसे पारसमणि अक्षरपुरुष धरती पर साधारण रूप में प्रगट होकर असाधारण एवं अद्‌भुत कार्य करने आते हैं और उनका उद्‌देश्य होता है इस प्रकृतिवश संसार को अक्षरधाम में परिवर्तित करने का....हरेक को शाश्वत् सुख, शान्ति, आनन्द का स्वतंत्र भोक्ता बनाने का.....

स्वामिनारायण भगवान का संकल्प था कि मेरे लिए नहीं.....मेरे आश्रितों के लिए जीना है। 'दास का दास ! वही स्वप्न आज साकार दिखाई पड़ता है। प.पू. काकाजी सम्राट होते हुए भी अपने भक्तों के दास है। योगीजी महाराज ने प.पू. काकाजी को आज्ञा करी कि 'नन्दाजी को चुनाव में विजयी करा दो'। गुरु आज्ञा में तन, मन, धन सब न्यौछावर कर दिया। नन्दाजी तो चुनाव विजयी हुए पर सेवा के फलस्वरूप योगीजी महाराज ने काकाजी को प्रकृति का गढ़ जिता दिया। गुरु भी अनन्य और शिष्य भी अनन्य !

गोंड़ल के अक्षरमंदिर में इन्हें 72 घंटे की समाधि करवाई....और...प्रकृति का सम्पूर्ण रूपान्तरण हो गया। अक्षरधाम का दर्शन हुआ, भगवान स्वामिनाारायण व योगीजी महाराज की एकता दिखाई पड़ी ! मानव चेतना का दिव्यचेतना में रुपान्तर हो गया। काकाजी ब्रह्मस्वरूप हो गए–उनका शरीर, मन, बुद्धि, प्राण आदि ब्रह्म के धारक बन गए, उपनिषद् का 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव व भवति' सूत्र यहां चरितार्थ हो गया ! इससे भी अधिक वे हरेक को ब्रह्मरस का अमृतपान कराने वाले सागर रूप हो

गए !!

अब प्रश्न यह उठता है कि प्रभु धारण करने के बाद उनकी रात दिन की प्रवृत्ति किसके लिए? हम सभी के लिए !! इनका जीवन केवल पृथ्वी पर अक्षरधाम लाने ही बीत रहा है।

श्रीमद् भगवद्गीता में श्री कृष्ण भगवान ने भी अर्जुन को कहा है 'मुझे तो तीन लोक में किसी भी प्रकार का कर्तव्य करना शेष नहीं है।'

ब्रह्मरूप हो जाने के बाद 'काकाजी' को कौन सा कर्तव्य करना शेष रहता है? तब भी अगर पू. काकाजी की जीवनचर्या पर दृष्टि डालें....प्रातः 5 बजे से मध्यारात्रि 12 बजे तक ही नहीं, आधी रात को भी सतत कर्तव्य कर रहे हैं–सतत विचरण कर रहे हैं– भारत, इंगलैण्ड, अमेरिका आदि अनेक देशों में। काकाजी के जीवन का उद्देश्य केवल प्रकृति मूढ़, भ्रमित, दुःखी लोगों में भगवद्चेतना जगा कर एक परस्पर सुहृदयी संसार के निर्माण करने का है।

पू. काकाजी हमसे क्या चाहते हैं? कुछ नहीं। जिसको अनन्त की प्राप्ति हो गई हो वह सन्त को क्या चाहिएगा? जो स्वयं कस्तूरी मृग हो वह फूलों के पास क्यों जाएगा? जो स्वात्माराम हो, अर्थात् जो अपने आपमें से नित्य-नित्य अभिनव आनन्द ले सकता हो या दे सकता हो वह अन्य व्यक्ति या पदार्थ से आनन्द प्राप्त करने की चेष्ठा क्यों करेगा? **''न हि स्वात्मारामं विषय मृगतृष्णा भ्रमयति।''** साक्षात्कार के पश्चात् उन्हें अपने लिए कुछ करना नहीं है। किन्तु वह आध्यात्मिक आनन्द को बांटकर अनुभूत करना चाहते हैं। **'मुझे जो मिला वो सबको मिले'**–कितनी करुणा ! इसके लिए ही अब इनका जीवन है, वाणी और व्यवहार है और इसी के लिए उनका देश-विदेश का सतत् विचरण है। 3 फरवरी 1952 के दिन साक्षात्कार हुआ इसके बाद इन्होंने 'अक्षरदेरी' में ही संकल्प किया था–'जो मुझे दो वो सबको दीजिए।' यहाँ करुणा और सुहृदयभाव का मिलन हो गया ! आज प.पू. काकाजी को देखते ही हरेक को लगता है–

– यह मेरे हैं–**आत्मीयता**

– यह मेरे असली स्वजन हैं–**सहृदयता**

– यह मुझे कहीं भी चुभेगा नहीं–**सरलता**

– मेरी उल्टी बात को भी सीधे रूप में ले लेगा– **निर्दोषबुद्धि**

– इनके प्रभाव में दाहकता नहीं तेज है **तेजस्विता**

– यह तेज किसी भी रूप में प्रगट हो, मेरे लिए ही है–**कल्याणप्रदता**

– यह मेरे लिए भजन या महापूजा करके मेरे कष्टों का हरण करेगा–**आश्रयप्रदता**

– यह मेरे जंग खाए लोहे को सुवर्ण नहीं, पारसमणि बना देगा–**भगवदियता**

परमात्मा की अनहद्कृपा से हम ऐसे प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी की सेरे छाया में है। स्वामिनारायण भगवान, गुणातीतानंदस्वामी, भगतजी महाराज, जागास्वामी, शास्त्रीजी महाराज, योगीजी महाराज के दर्शन की इच्छा 'काकाजी' के दर्शन से ही पूर्ण हो जाती है। संक्षेप में स्वामिनारायण और पूरी परंपरा 'काकाजी' के असाधारण रूप में प्रगट है।

हमें इस महामंगलकारी अवसर पर एक ही दृढ़ प्रतिज्ञा करनी है कि हम मानवस्वरूप में विचरण करती हुई इस मूर्ति को अक्षरधाम की प्रभु की मूर्ति मान सके.... किसी भी प्रकार से इस भव्य प्राप्ति को समझ पायें। हमें केवल सरल बनना है, सुहृदयी बनना है। फिर कृपावतार भगवान स्वामिनारायण की कृपा हम पर बिना कहे बरसने लगेगी। यह जो संबंध हुआ है, बस– इसे संभालने मन, बुद्धि, चित्त छोड़कर TOTAL समर्पित हो पायें। जो प्राप्ति उन्हें हुई है वही प.पू. काकाजी हमें देना चाहते हैं....अक्षरधाम के सुख में हमें भागीदार बनाना चाहते हैं....

इस पवित्र अवसर पर हम वास्तव में 'सम्राट' के राजपुत्र बन पायें। अक्षरधाम के मालिक को हम राजी कर लें....यही दिल की सच्चाई से गुरुचरण में अभीप्सा.....

☆ ☆ ☆

नादब्रह्म—

आप सभी आपकी देह के, आपके मन के, आपकी मान्यता के हो। कोई साधन प्रभु को पाने का किया हो उसके हो, प्रभु के नहीं हो–प्रभु के स्वरूप के नहीं हो। मेरे आशीर्वाद, मेरा मंत्र, मेरा नामस्मरण का खूब अनुभव होने के बावजूद भी आप मन नहीं सौप सकते हो। केवल बोलते रहते हो 'सर्वस्व मारु जे मान्युं ते तुं स्वीकारी ले।' लेकिन जब प्रभु लेने लगते हैं तो आप चीखने लगते हो, चिल्लाने लगते हो कि अब हम जियेंगे कैसे। मर जाने तक तैयार हो जाते हो। पर उन्हें अपने अन्तर के गटर की सफाई नहीं करने देते।

एक बात समझ रखना, कितनी ही भक्ति करा करो, सेवा करो–अरे,लाखों रुपये की सेवा करो, पर अगर वह मनमानी है तो वह बन्धन है। वह स्वभाव को पुष्ट करेगी। स्वरूप का वह भ्रमात्मक ज्ञान है। अब तो, उस भ्रमात्मक ज्ञान में से निकल जाओ। कई सिद्ध पुरुष तप, त्याग, ज्ञान, योग, व्रत, दान के आधार पर कितनी ही ऊँची कक्षा पर गए, पर वही धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति ब्रह्मचर्य, सत्य-निष्ठा, वणीश्रमधर्म पराभक्ति में बन्धनरूप हो गए और बहुत तो असुरभाव को भी पा गए। सूक्ष्म मान, ऐश्वर्य, रिद्धि-सिद्धि प्रभु को प्राप्त करने में बाधा रूप हो गए। अपना गुणातीत ज्ञान यहां एकदम अलग, निराला व प्रभावपूर्ण है। यहां मन सौंपने के बाद शुरुआत होती है। 'सर्व धर्मान् परित्यज्य'...। प्रभु के पास, संत के पास मन, बुद्धि, चित्त सौंप कर ही प्रभु के सच्चे आनन्द के भोक्ता बन सकते हैं। प्रभु के धारक सच्चे संत के साथ अपना ज्ञान और तज्जनित अहं रख कर संबंध नहीं जोड़ा जा सकता। उसके साथ हम बहस कैसे कर सकते हैं? हाँ, विनम्रता से सूचन कर सकते हैं। जिसको भी आपने स्वरूप माना हो उसके पास तो केवल सरलता, नम्रता और रंकभाव ही....।

अनुभव होने के बाद किसी एक को प्रभु का स्वरूप मानकर जीना ही पड़ेगा। सचमुच, आपने ऐसे किसी को माना क्या? गुणातीत पुरुषों के माध्यम से गुणातीत परंपरा अविरत चल रही है। यह ज्योति कभी क्षीण नहीं हुई....महाराज के प्रागट्य से अखंड प्रज्जवलित ही है। प्रभु रखे ऐसे संत को मन सौंप दो या ऐसे परम भगवदी को सौंप दो। हमारी सीमित बुद्धि सागर जैसी गहरी विभूति को नापने में असमर्थ है। सो यह बुद्धि से परे का विषय है। अटूट श्रद्धा व अटूट विश्वास का यह विषय है। संशोधन का यह विषय नहीं है। यह Physical science का विषय नहीं है, बल्कि spiritual subject है। यह विषय है आत्मबुद्धि व प्रीति का। सीताजी जैसी समझदारी का विषय है। वास्तव में आप स्वयं अपने आपसे पूछना आप किसके हो? सच में किसके हो? सच में संत के हो? या केवल भ्रम में टहल रहे हो। केवल अज्ञान और अस्मिता की भूल-भूलैया में अपने जीवन का प्रत्येक क्षण क्यों गवां रहे हो? जब तक अस्मिता प्रगट हुआ करती होगी तब तक ब्रह्मभाव आप में प्रगट नहीं हो पाएगा। दरअसल तो ब्रह्म के प्रवेश से ही तो हम हर क्रिया कर सकते है। उसके बिना तो हम जीवन भी जी नहीं सकते। हमारा अस्तित्व ही नहीं रह सकता, फिर व्यक्तित्व की तो बात ही कहां रही? फिर भी खूब दयालु प्रभुस्वरूप अवतारों के अवतारी श्री सहजानंद स्वामी 200 साल पहले धरती पर प्रगट हुए....और एक दिव्य विरासत के रूप में गुणातीत परंपरा को जीवंत छोड़ गए। आप उन गुणातीत पुरुषों के संपर्क में हो। इसलिए बस आनन्द करो....आनन्द करो और कोटि-कोटि धन्यवाद महाराज को दो और महाराज के प्रत्यक्ष स्वरूप को दिव्य मानो ही। न माना जाए तब भी उसे दिव्य मानो ही। यहाँ श्रद्धा और विश्वास की बात आती है। अपनी जड़ बुद्धि को तिलांजलि दे दो। न दे सको तो प्रायश्चित रूप प्रार्थना करो। तीव्र भजन करके पुकार करो और जिसके लिए आपके दिल में भावफेर आ जाता हो, चुभ जाता हो उसके लिए Joyous forgiveness (प्रेमपूर्वक क्षमा) से शुरुआत करो।

तो अब पहले दृढ़ ठहराव करो। 'स्वामिनारायण' महामंत्र को सिद्ध कर लो। यह बहुत सरल उपाय है। चाहे आप में कितने भी स्वभाव हों, फिर भी वह दुर्वासा की तरह निर्गुण होगा। खाना-खाने के बाद भी जैसे वे उपवासी। महाराज के अनन्य सेवक पर्वतभाई,

दादाखाचर गृहस्थी होते हुए भी निर्वासनिक ! मंत्र सिद्ध नहीं किया होगा तो स्वभाव झलकेंगे ही। गुणातीत सत्पुरुष को अन्तर की कृपा, सहायता, विशिष्ट अनुग्रह के बिना मंत्र सिद्ध नहीं हो सकेगा। 'स्वामिनारायण' महामंत्र–नामी सहित नाम है।

1985 का वर्ष गुणातीत द्विशताब्दी का वर्ष रूप मनाया जाएगा। प्रकट ब्रह्मस्वरूप प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी, प्रकट ब्रह्मस्वरूप प.पू. पप्पाजी, प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी, प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी, प.पू. साहेब सभी महामुक्तों यही मार्ग पर हैं। गुणातीत समाज को धन्य हो। अब इन प्रगट विभूतियों को लूट लेने का अवसर खोओ मत। आरम्भ ही कर दो। Well begun is half done...दृढ़ संकल्प कर लो 'Do or Die –करेंगे या मरेंगे नहीं–'करेंगे ही करेंगे'। अगर आपका निर्णय पक्का होगा तो परीक्षित की तरह आप भी सात दिन में भव्य प्राप्ति कर पाओगे। क्यों? आपको गुणातीत सत्पुरुष प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. स्वामिजी मिले हैं। आप इनके जोग में हो। आपको सचमुच करना है? तो ठहराव पक्का रखो। जैसा पू.साहेब ने रखा था। '(स्व) ठहराव रहित, गुरुमुखी'। जैसा दिनकरभाई ने अमेरिका में सर्वदेशीयता से सभी का–काकाजी, पप्पाजी, स्वामिजी, साहबे–सभी का प्यार प्राप्त किया। अब धोखाधड़ी बनावट जमाना चलने नहीं देगा। तो हठ, मान, ईर्ष्या छोड़ दो। जीवभाव की awareness छोड़ दो। आपकी हरेक क्रिया संत को राजी करने की नहीं, बल्कि वृत्तियों का पोषण करने की है। देह ही बाधारूप है। ध्यान में, भक्ति में, सत्संग में हमें मान चाहिए। अन्दर-अन्दर मैत्रीभाव दृढ़ नहीं कर सकते। पांच मित्रों के साथ, पांच भगवदी के साथ, पांच शिष्यों के साथ तो रसरूप हो जाना ही पड़ेगा। वही सच्ची सार्थकता है। सद्गुरुओं के लिए यह अनिवार्य शर्त है। तब ही मंहताई शोभेगी। वरना गद्दी छोड़ दो। यह जमाना नहीं चलाएगा।

अब एक ही आध्यात्मिक युग शुरु हो गया। अब गुणातीत संकल्प काम करेगा–कर रहा है। गुणातीत कल्प वृक्ष के फलने-फूलने का स्वर्ण युग आ गया है, अगर आपको करना ही है। सचमुच करना है? तो आप सभी के लिए स्वर्ण अवसर है। तो पहले दृढ़ संकल्प करो। 'मैं स्वामिनारायण महामंत्र को सिद्ध कर लूँ।' संकल्प दृढ़ है। पांच Time भजन करो। दिन में तीन संध्या और दो बार आधा-आधा घंटा–ऐसा 7 दिन के लिए प्रयोग करो। संत के वचन से नामी सहित नाम का भजन। भगवान, संत और दो भगवदी (रुचिवाले)। दो भगवदी जिनके आपका स्वभाव टकराता हो, जिसका आपको चुभ जाता हो या जो आपको मनमानी करने से रोकता हो, अंतर्दृष्टि कराता हो उसके लिए Joyous forgiveness (प्रेमपूर्वक क्षमा) दो। वह खुद आपका ही स्वभाव है। उस भगवदी को तो धन्यवाद दो, क्योंकि वह आपके अन्तःकरण के शुद्धीकरण में सहायरूप है। धन्यवाद न दो तो अंतर्दृष्टि करो। दूसरा, उठते-बैठते, खाते-पीते, फिरते-हरते स्मृतियज्ञ करो। स्मृतियज्ञ के बाद ध्यानयज्ञ। जब ध्यान हो जाए तो अखंडवृत्ति और प्रार्थना। प्रभु की मूर्ति में अगर अखंड वृत्ति रखोगे तो निर्दोषबुद्धि स्वाभाविक आ जाएगी। देह नामरूप झूठ है, असत्य है, क्षणभंगुर है। वो नाम रूप छोड़ कर मैं ब्रह्मरूप हूँ, अक्षररूप हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ...स्वामी की बात प्रथम प्रकरण की आखरी। यह दृढ़ करने के लिए स्वामी की बात प्रथम प्रकरण की पहली। तीव्र अभीप्सा से पांच बार कुम्भक करो। एक-एक मिनट के लिए अभ्यास करो। वचनामृत गढ़डा प्रथम का 22 और वच. म.प्र. 49 से शुरुआत करो।

सर्वप्रथम (मन, बुद्धि) से सात दिन के लिए दीक्षा ले लो। पक्का निर्णय करो। आध्यात्मिक एनीमा ले लो, जिससे अन्तर का सब कचरा निकल जाए। मन से मानी मान्यता, अहंता निकल जाए, भूतकाल खत्म हो जाए। उसके लिए एक दिन Total मौन रखो। मौन वाले सारा दिन गुणातीत भाव में रहो। बार-बार योगीगीता, महेलाव के संकल्प, गुणातीत ज्ञान का नवनीत–उसका सिद्धान्त दोहराओ। बस दूसरा कोई संकल्प नहीं–केवल गुणातीत भावना। प्रभु के चरणों में शीशनामी दीनता उच्चारण करो कि–हे बापा ! अब तक हमने खूब समय व्यर्थ गंवाया, पर अब से आप

जैसे हो वैसे हमें स्वरूप महिमा समझाना। आपके स्वरूपों की तत्त्व से पहचान हो जाए यही अनुग्रह आप हम पर करना। स्वामिनारायण महामंत्र सिद्ध करने से जीव ब्रह्मरूप हो जाता है। भक्तों का गुणगान करने से भी ब्रह्मरूप हो जाता है। ब्रह्मरूप होने के लिए फिर आता है आध्यात्मिक शीर्षासन। आध्यात्मिक शीर्षासन स्मृतियज्ञ से शुरु होता है। जो मौन में नक्की किया वह मनन द्वारा संत की स्मृति पक्की करो। उसका अभ्यास करो। उसके लिए प्राणिक जप करो। प्राणिक जप करने से लाख गुणा Power मिलती है क्योंकि अन्तरात्मा जाग्रत हो जाती है। फिर ब्रह्मरूप होकर प्रभु को अपने हृदय में धारण करो। यहां ज्ञानयज्ञ पूरा हो जायेगा। दो भक्तों के साथ रसरूप हो जाओ, जबरदस्ती भी रसरूप हो जाओ तो माया नड़ेगी नहीं। सतत अंतर्दृष्टि व प्रार्थना...। केवल प्रभु धारण की विभूति का सतत अनुसंधान..।

यह बुद्धि का विषय नहीं है। यहाँ सत्पुरुष का पूरा विश्वास और श्रद्धा चाहिए। खुले दिल से प्रार्थना करोगे तो सात दिन में अनुभव कर सकते हो। हमारा द्वार खुला है। तारदेव, पवई हर जगह खुला है। क्योंकि प्रकृति पुरुष से पर का गुणातीत ज्ञान सर्वदा मूर्तिमान, सर्वोत्तम और अखंड प्रगट है। आपके हृदय में भी ब्रह्मतत्व उसी प्रकार विराजमान है जिस प्रकार जड़ में अग्नि, तल में तेल, फूल में सुगन्ध, दूध में घी है। तो अब आपकी मान्यता सदन्तर छोड़ दो। हरेक क्रिया प्रभु का स्मरण करके करो। यह प्रेक्टीस करो। भूलो नहीं। और इसके लिए रात को प्रायश्चितरूप प्रार्थना कर के सो जाओ। रात की प्रायश्चितरूप प्रार्थना अगर दिल की सच्चाई से होगी तो महाराज अमाप बल देंगे।

स्वामिनारायण महामंत्र सिद्ध करने के लिए 12000 माला सात दिन में करो। हर रोज नौ सौ-नौ सौ माला दो जने साथ में मिलकर जोड़ में करो। यही जप से मंत्र सिद्ध हो जाएगा। मंत्र सिद्ध होने से मूर्ति सिद्ध हो जाएगी। मूर्ति सिद्ध होने से आपकी हरेक क्रिया निर्गुण हो जाएगी। एक understanding आ जाएगी। भगवान संत की प्रसन्नता मिल जाएगी। सीताजी जैसी समझदारी दृढ़ हो जाएगी। स्वभाव रहते हुए भी आप स्वभाव रहित हो जाओगे।

महाराज और मू.अ.मू. गणातीतानंदस्वामी सबको खूब बल देवें और गुणातीत द्विशताब्दी का समैया जय-जयकार करते मनाया जाए। यही महाराज, स्वामी, प.पू. शास्त्रीजी महाराज, प.पू. योगीजी महाराज, प.पू. हरिप्रसादास्वामी, प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी, प.पू. साहेब, प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी, प.पू. हरिभाई साहेब, सर्वमहामुक्तों अन्तर के आशीर्वाद देवें यही गुरुरचरण में सभी की ओर से प्रार्थना। अन्तर से प्रार्थना...और अन्तर से आशीर्वाद...जय स्वामिनारायण।

–प.पू. काकाजी महाराज

5 जन. 85

Statement about Ownership and other particulars about newspaper

'भगवत-कृपा'– 'THE DIVINE GRACE'

(Form IV Rule 8)

1. Place of Publication	:	Yogi Divine Society, A-103, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052
2. Periodicity of its Publication	:	Monthly
3. Printer's Name	:	Sadhu Mukund Jivandas
Nationality	:	Indian
Address	:	Yogi Divine Society, A-103, Ashok Vihar-III, Delhi-110 052
4. Publisher's Name, Nationality, Address	:	As above
5. Editor's Name, Nationality, Address	:	As above
6. Owner's Namew, Nationality, Address	:	As above

I, Sadhu Mukundjivandas, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Sd/- **Sadhu Mukundjivandas**

Date: 25th January, 1985 Signature of Publisher

PUBLISHED By SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,

A 103, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. India, Tel. 7128838

Printed at R.P.,Printers, Shahdara, Delhi-110 032